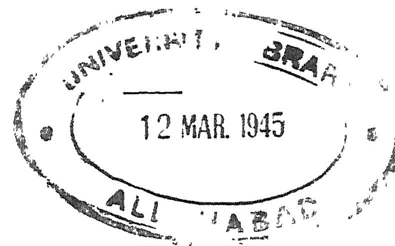
मानवी

युग-युग के अगणित क्लेशों की
तू है करुण कहानी।

लेखक
ठाकुर गोपालशरणसिंह
नईगढ़ी, रीवाँ

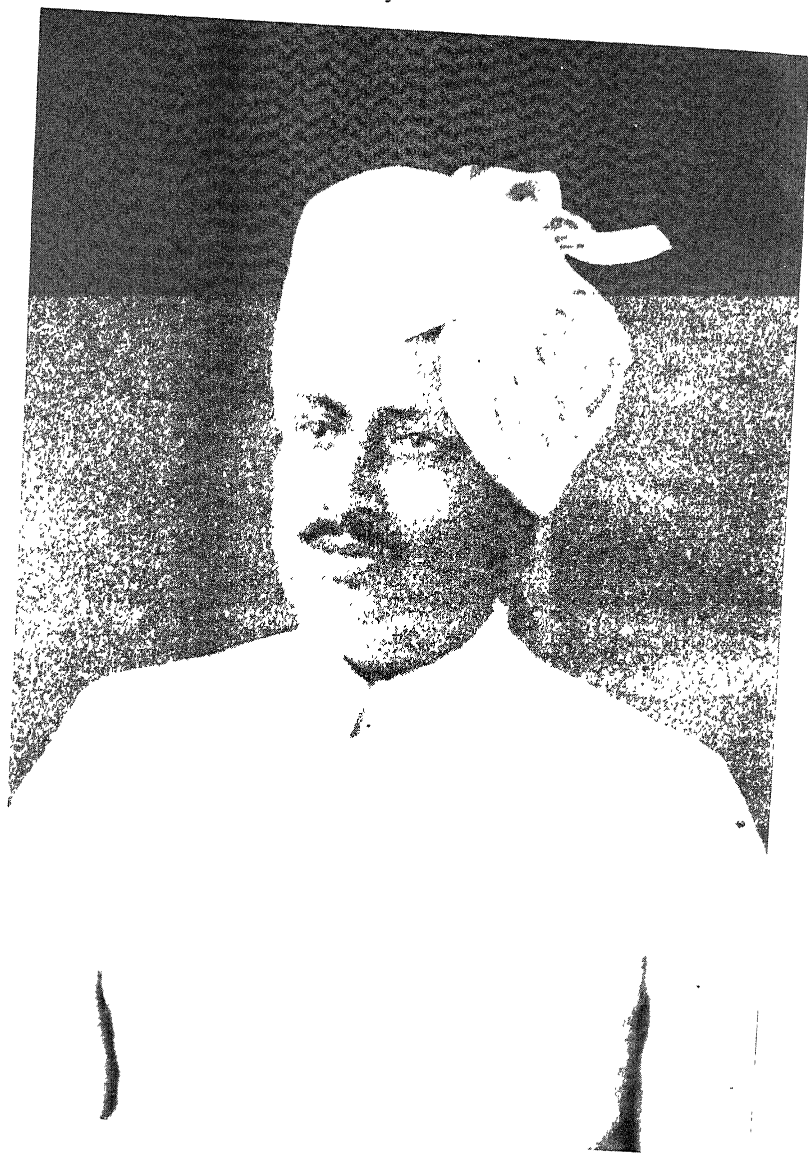
भूमिका-लेखक
महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह, एम० ए०, डी० लिट०



प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
१९३८

मूल्य १॥।)

Printed and published by
K. Mittra, at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.



कवि

प्राक्कथन

स्त्री-हृदय चिरकाल से ही मनुष्य के लिए एक अबूझ पहेली रहा है। अपनी शक्ति, सत्ता और आधिपत्य के ज़ोर से मनुष्य स्त्री को आज्ञाकारी, विनीत एवं अपनी अनुगामिनी बना सका; मनुष्य की वीरता ने स्त्री को मुग्ध कर लिया; अपने हृदय की कोमलता से मनुष्य ने स्त्री के प्रेम को भी प्राप्त कर लिया, किन्तु फिर भी मनुष्य मानवी के अदृष्ट हृदय की उन गूढ़तम भावनाओं को, उस हृदय के गुप्त भेद को बिलकुल ही नहीं पा सका। मनुष्य का मानवी के साथ जो निकटतम, घनिष्ठ एवं चिरकालीन सम्बन्ध रहा है, उससे भी उसको कोई सहायता प्राप्त न हुई। तथापि मनुष्य का कल्पनाशील मस्तिष्क मानवी के हृदय को समझने का, उसके भावों और अंतरतम में ही उत्पन्न होकर वहीं लुप्त हो जानेवाले उसके गुप्त विचारों को समझ कर उन्हें व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। किन्तु इस कार्य में किसी को भी पूर्ण सफलता मिली हो ऐसा नहीं कहा जा सकता; महाकवि शेक्सपियर की चरित्र-नायिकाओं में भी स्त्री-चरित्र का सम्पूर्ण चित्रण एवं विकास देखने को नहीं मिलता।

परन्तु ये विफलतायें ही मनुष्य को उस ओर अधिकाधिक आकृष्ट करती हैं। यही कारण है कि "माधवी" का शान्त-रस-प्रधान माधुर्य भाव का कवि, और "कादम्बिनी" का सीधा-सादा गायक भी आज अनजाने युग-युग के दुःसह दुखों की करुण-कहानी की विवेचना करने को उतारू हो गया।

सुप्रसिद्ध रोमन कवि ओविड (Ovid) कृत "हिरोइक एपिसल्ज़" (Heroic Epistles) के आदर्श पर बंगाल के सुप्रसिद्ध महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने "वीरांगना" की रचना की थी, जिसका

हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। इन दोनों पुस्तकों का साहित्यिक क्षेत्रों में बहुत ही आदर है, परन्तु दोनों काव्य पौराणिक प्रेम-कथाओं के आधार पर लिखे गये थे और उनका क्षेत्र वर्णित वस्तुओं तक ही सीमित रहा। कथा-प्रसंग के साथ ही जिन जिन प्रश्नों पर उन कवियों को कुछ विचार करना पड़ा उन्हीं की विवेचना उन्होंने की। परन्तु इसके विपरीत "मानवी" का कवि नारी-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न कर रहा है। नारी-जीवन का महान् प्रश्न आज बहुत ही उग्र स्वरूप में हिन्दू-समाज के सम्मुख समुपस्थित हुआ है। "मानवी" के कवि ने हिन्दू-जीवन में व्याप्त उन दुःखान्त कहानियों को लेकर सामयिकता के धरातल पर अपनी कविता का स्रोत प्रवाहित किया है, और पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानकों को लेकर उसने वर्तमान सामाजिक समस्याओं की विवेचना की है। हिन्दी में अपने ढंग का यह प्रथम ही प्रयास है, जो कि सर्वथा अभिनन्दनीय है।

कवि नारी-जीवन की विवेचना करने, उसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने चला है, एवं, वह मानवी के हृदय की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहा है। रीतिकाल के कवियों ने नायिका-भेद-द्वारा स्त्री के विचारों, भावों एवं इच्छाओं का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वह विश्लेषण बाह्यतम भावनाओं, विलास-वासनाओं और शारीरिक सौन्दर्य तथा हाव-भाव तक ही सीमित रह गया था। अन्तरतम में बसनेवाले हृदय को वे कवि कभी भी पूर्णतया नहीं छू सके। उन कवियों के लिए नारी-हृदय एक खिलवाड़ तथा मनोविनोद की वस्तु थी; यही कारण है कि वे विफल ही नहीं हुए किन्तु उनकी कविता में कामुकता एवं विषय-वासना ने घर कर लिया। परन्तु "मानवी" के कवि के हृदय में नारी-हृदय के प्रति अटूट सहानुभूति भरी हुई है; और उसी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से कवि नारी-हृदय को देखना चाहता है, उसके प्रत्येक पहलू की जाँच करना चाहता है। प्रारम्भ में ही "मानवी"

के विश्वरूप को देखते देखते कवि अनजाने उसके करुण स्वरूप की ओर खिंच गया और नारी-जीवन की दुरवस्था को देखकर कवि का शान्त, माधुर्यपूर्ण हृदय अशान्त और द्रवित हो गया तथा कठोर-हृदय मानव-समाज को नारी की दुःखान्त कहानी सुनाने के लिए वह चंचल हो उठा। "मानवी" उसी द्रवित अशान्त हृदय की पुकार है; कवि के इस काव्य में नारी-हृदय की चिरकालीन विश्व-वेदना का स्वर गूँज रहा है।

× × ×

नारी-जीवन को तीन प्रधान विभागों में विभक्त कर सकते हैं—कौमार्य, पत्नीत्व एवं मातृत्व। कौमार्य काल में नारी-जीवन का प्रारम्भ एवं प्रस्फुटन होता है। बालिका धीरे धीरे पत्नीत्व की ओर अग्रसर होती है और उस पद के उपयुक्त बनने का वह प्रयत्न करती है। उसके हृदय पर भावी आशाओं और आकांक्षाओं का बृहत् भार रहता है फिर भी वह अपने पिता के घर के आँगन में चिड़िया के समान स्वच्छन्द सानन्द चहकती फिरती है। भावी जीवन तब उसके लिए एक विषम पहेली बना रहता है; विवाह उसे भाग्य की एक अमिट रेख, विधि का एक अवश्यम्भावी विधान जान पड़ता है; एवं मातृत्व भयास्पद के साथ ही साथ कौतूहलोत्पादक भी प्रतीत होता है। अपनी जन्मभूमि, अपने बाप के घर में भी अतिथि के समान रहनेवाली उस भोली-भाली बालिका का जीवन, उसकी भावी आशाओं तथा आशंकाओं का संघर्ष लेखकों के लिए एक अच्छा विषय है। महान् घटनाओं से विहीन होते हुए भी वह कौमार्यकाल भावनाविहीन नहीं होता। "मानवी" के कवि ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है, एवं उनसे आशा की जाती है कि वे इस काल के नारी-जीवन पर भी क़लम चलाकर इस कमी को पूरी कर देंगे।

"दुलहिन" के स्वरूप में पत्नीत्व का प्रारम्भ होता है। कवि ने

उसी शीर्षक कविता में दुलहिन की आशाओं तथा आकांक्षाओं, उसकी हिचक, झिझक और साथ ही उसकी निर्भीकता का भी वर्णन करते हुए लिखा है :—

"शृंगार छिपा है उर में
करुणा है भरी नयन में।
है शोक भरा मृदु मन में
लावण्य-लोक है तन में।
सुध स्नेहमूर्ति माता की
है बारम्बार रुलाती।
पर नई प्रीति आकर है
सान्त्वना उसे दे जाती।"

और तब अपने नवीन गृह में 'परदे में' बैठी वह नव-वधू अपने भावी जीवन की पहेली सुलझाती है। प्रत्येक देश के दाम्पत्य-जीवन में कई बातें ऐसी रह जाती हैं जिनका कुछ भी ज्ञान संसार को नहीं रहता, और विशेषतया जिस समाज में आज भी नारी को अपना समस्त जीवन 'परदे में' ही बिताना पड़ता है वहाँ के नारी-जीवन के बारे में कुछ भी जानना एक असम्भव-सी बात हो जाती है। उस झीने किन्तु स्थायी परदे के पीछे क्या क्या होता है? किस प्रकार वहाँ सुख-दुख निरन्तर द्वन्द्व करते रहते हैं; जहाँ किसी को भी जाने की आज्ञा नहीं होती वहाँ भी किस प्रकार अनजाने बिना बुलाये ही क्लेश-व्यथायें पहुँच कर अपना घर कर लेती हैं, वहाँ की परिस्थिति का पूरा पूरा वर्णन कवि के शब्दों में ही पढ़ना अधिक उपयुक्त होगा।

और परदे के पीछे बसनेवाले उस पत्नीत्व में भी कई बार अनजाने ही दुख घुस आता है। जिस चाह, उमङ्ग और आशाओं के साथ वह विवाह हुआ था उन सबका अन्त हो जाता है और उस बेचारी नारी को उपेक्षिता का जीवन बिताना पड़ता है।

तब तो वह उपेक्षिता भी उसाँसें भर कर रो पड़ती है और करुणा-पूर्ण शब्दों में कहती है—

"हो गया अपरिचित जन-सा
जीवन-धन हृदय-निवासी।
रस-सागर के तट पर मैं
रहती सदैव हूँ प्यासी।"

किन्तु दो निःश्वास लेकर कुछ आँसू बहाकर ही उसे सन्तोष करना पड़ता है; उसके जीवन की तो ये ही एक-मात्र निधियाँ रह जाती हैं।

पत्नीत्व का पूर्ण विकास मातृत्व में होता है। यह मातृत्व नारी-जीवन का एक विशेष अंग है एवं कवि उसको नहीं भुला सका और उसने "माँ" शीर्षक कविता की रचना की है। परन्तु मातृत्व के साथ ही वन्ध्या की हृदय-व्यथा सुनने को भी जी ललचाता है। पुनः मातृत्व के साथ ही उसकी ट्रेजेडी—पुत्रवियोग—की भी सम्भा-वना खिँची चली आती है, और 'उच्छ्वास' में कवि ने इस दुःखान्त कहानी का भी वर्णन किया है।

किन्तु नारी-जीवन की समस्या आज या कल की नहीं है; वह युग-युग की करुण कहानी है, मानव-जीवन के प्रारम्भ से ही वह शुरू होती है और आज भी वह विद्यमान है। सत्ययुग की शकुन्तला, त्रेता की सीता, द्वापर की राधा और मुग़लकाल की अनारकली की करुण-कहानियों पर प्रकाश डालकर कवि ने नारी-जीवन की समस्या की एकता एवं उसकी अविच्छिन्नता की ओर स्पष्ट निर्देश किया है। जो जीवन-प्रवाह सत्ययुग में कुञ्ज, उपवन और आश्रम में रहनेवाली ऋषि-बालिका शकुन्तला की करुण-कहानी में बहा था वही धारा मध्यकालीन ऐश्वर्य-विलासपूर्ण शाही महलों की परिचारिका अनार-कली की दुःखान्त जीवनी में भी विद्यमान थी। देशकाल के साथ ही उस समस्या के बाह्य-स्वरूप और आभ्यन्तरिक वातावरण में भले

ही परिवर्तन हो जावें किन्तु उससे उस समस्या की आन्तरिक एकता में अन्तर नहीं पड़ता।

इन सब कथानकों को लेकर बहुत कुछ लिखा जा चुका है; बड़े बड़े महाकवियों तक ने उन पर अपना काव्य-कौशल दिखाया है; एवं उनकी कृतियों के साथ "मानवी" की कविताओं की तुलना न कर यही कह देना उपयुक्त होगा कि "मानवी" के कवि का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण है और उसे कवि ने पूर्णतया निबाहा है। इन देवियों के प्रति मनुष्य-समाज द्वारा दिखाई गई उपेक्षा या उन पर किये गये अन्यायों की वार्ता कवि के हृदय पर चोट कर गई है और उसी से संयमित रस में रहनेवाला यह कवि भी क्षुब्ध होकर प्रथम बार विचलित हो गया। असन्तोष ने विद्रोह का स्वरूप ग्रहण किया है; कवि की इस कृति में समाज के जटिल बन्धनों के प्रति अनादर का भाव भी देख पड़ता है। यही कारण है कि जहाँ कालिदास भी राजा दुष्यन्त के समान बहुपत्नीक राजा को अपने नाटक का प्रधान चरित्र-नायक बनाते नहीं हिचका, और शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त की उपेक्षा को दुर्वासा ऋषि के शाप का परिणाम बताया, वहाँ "मानवी" के कवि ने उसी घटना को भी मनुष्य द्वारा स्त्री पर किये गये अत्याचारों के एक ज्वलन्त उदाहरण के तौर पर पेश किया है। "मानवी" का कवि दुष्यन्त को क्षमा करने को तैयार नहीं है। किन्तु इतना सब होने पर भी कवि ने शकुन्तला के चरित्र-चित्रण में भारतीय नारीत्व के आदर्श को निभाया ही नहीं है उसे अक्षुण्ण भी बनाये रखा है।

पुनः कवि यह भी मानता देख पड़ता है कि उस प्रेम-लोक में, जहाँ सच्चे प्रेम का अगाध प्रवाह बहता है, समाज के कोई भी बन्धन प्रेमियों को अलग नहीं रख सकते, और उसी सच्चे प्रेम की प्राप्ति पर सुखानुभूति के फल-स्वरूप जो काव्य उद्भूत होता है वह अमर कृति हो जाता है। चण्डीदास की प्रेम-कहानी को लिखते लिखते कवि कह उठता है:—

"अपना सुख-सर्वस्व विश्व को
तुमने किया प्रदान।
गूँजेंगे सब काल अमर कवि
अमर तुम्हारे गान।"

किन्तु जब कवि सामाजिक बन्धनों के फलस्वरूप नारी पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन करने लगता है तब तो समाज के जटिल बन्धनों के प्रति उसका विद्रोह अधिक उग्र हो उठता है। अनमेल विवाहों को लेकर कवि लिखता है—

"कुसुमकली बानर के कर में
है मलीन म्रियमाण।
मृदुलतिका का प्रेमालिंगन
करता है पाषाण!

× × ×

उत्सव की मुदमयी निशा में
किसे भला है ध्यान।
जग की कोमल मानवता का
होता है बलिदान।"

पुन: "अभागिनी" बाल-विधवा की सुध भी कवि के हृदय को सन्तप्त किये बिना नहीं रहती। कवि देखता है कि—

"जग में रसधारा बहती है
पर तू प्यासी ही रहती है।"

क्योंकि—

"जब प्रेम-मिलन की चाह हुई
तब चिर-वियोग की व्यथा हुई।
ज्यों ही उसका आरम्भ हुआ
त्यों ही समाप्त वह कथा हुई।"

कवि ने "वारांगना" के हृदय में निरन्तर होनेवाले भावों के संघर्ष, "देव-दासी" के दिल में उठनेवाली हूक तथा प्यास, "अंधी" की असमर्थता और "भिखारिनी" की करुणोत्पादक दशा का भी विवरण कर नारी-जीवन के उन उपेक्षित पहलुओं पर भी सहानुभूतिपूर्ण प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

और अन्त में हिन्दी ही नहीं भारतीय साहित्य की उस अजर अमर नायिका "व्रजबाला" पर लिखी गई कविता का उल्लेख किये विना नहीं रहा जाता। कवि ने यद्यपि सामयिकता के प्रभाव में पड़ कर उस कविता में प्रेम-विहीन विवाहों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया, किन्तु "व्रजबाला" का विषय मँजकर अपने एक विशिष्ट स्वरूप को पा चुका है एवं एक बार उसके वर्णन-प्रवाह में पड़ कर कवि उसी प्रवाह में बह गया, तभी तो वह लिखने लगा—

"आता था जो तेरे घर
होता था जहाँ सवेरा।
वह वेणु बजानेवाला
गोपाल कहाँ है तेरा?

× × ×

कर मान न अब तू मानिनि!
है कौन मनानेवाला।
तेरे कोमल चरणों पर
निज शीश झुकानेवाला।"

कवि व्रजबाला को भुलावा देने का प्रयत्न करता है—

"तूने जिसको सच माना
वह निकला केवल सपना।
क्या कभी किसी की रहती
हैं बालपने की बातें।
सब काल बदलती रहती
हैं जीवन की दिन-रातें।"

परन्तु उद्धव के समान वह स्वयं ही भोली-भाली ब्रजबाला के भुलावे में पड़ कर उसे सुझाने लगता है—

"कह दे यमुना से जाकर
तेरा सन्देश सुना दे।
उलटी बह कर मथुरा से
शुभ समाचार भी ला दे।"

किन्तु तत्काल ही कवि को नारी-जीवन की करुण-कथा स्मरण हो आती है और एक निःश्वास भर कर कहता है—

"परवशता ही है तेरे
जीवन की करुण-कहानी।"

और मूक हो जाता है।

× × ×

इसमें सन्देह नहीं कि कवि ने एक नूतन क्षेत्र की ओर अग्रसर होकर कवियों के लिए एक नवीन मार्ग खोल दिया है। इस क्षेत्र में यह प्रथम ही प्रयास है एवं यत्र-तत्र अपूर्णता का रह जाना सम्भव है किन्तु यह बात स्पष्ट है कि कवि ने "मानवी" के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर भरसक प्रकाश डाला है। कवि की प्रधान विशेषता यह है कि उसने प्रोपेगेण्डिस्ट का स्वरूप नहीं ग्रहण किया। भावों के आवेश में आकर या कथा के प्रसंगानुसार यत्र-तत्र कवि ने अपने विचार लिख दिये हैं किन्तु वे घटनाओं की या परिस्थितियों की आलोचना-मात्र हैं; जो कुछ भी कवि को वहाँ सूझा उसे प्रस्ताव के तौर पर यत्र-तत्र लिखकर वह आगे चल पड़ा।

पुनः कवि ने नारी-जीवन एवं नारी-हृदय को समझ कर उनकी कठिनाइयों, भावनाओं, आशाओं और आशंकाओं को व्यक्त किया है। सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से कवि ने नारी-जीवन को देखा और समझा है; और उसका सरल भाषा में सुस्पष्ट रूप से वर्णन किया है। जिस ढंग और भाषा में कवि ने इस अतीव

उलझी हुई समस्या को समझाने का प्रयत्न किया, वह कवि की विशेष देन है। ठाकुर गोपालशरणसिंह जी हिन्दी के एक लब्ध-प्रतिष्ठ कवि हैं, हिन्दी-भाषा-भाषियों को उन पर गर्व है। ठाकुर साहब की रचनायें मधुरता में व्रजभाषा की कविताओं की स्पर्द्धा करती हैं। और अपनी उसी मँजी हुई भाषा और माधुर्यपूर्ण शैली को लेकर उन्होंने "मानवी" की रचना की है। मैं एक नवीन क्षेत्र में हिन्दी के प्रथम कवि के स्वरूप में ठाकुर साहब का अभिवादन करता हूँ; और आशा करता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-संसार में उनकी इस नवीन कृति का समुचित आदर होगा। ठाकुर साहब ने "मानवी" के जीवन पर प्रकाश डाला है, उसके भावों और दुखों का भी विशद वर्णन किया है; परन्तु नारी-जीवन को समझाने और उसको व्यक्त करने में उनको को कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय पाठक, समालोचक एवं मनो-वैज्ञानिकों के साथ ही साथ नारी-समाज पर भी छोड़ देना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

रघुवीरनिवास
सीतामऊ
२७ अप्रैल, १९३८

रघुवीरसिंह

विषय-सूची

मानवी

कोमल-नवल-नवल-पल्लव-दल -
        कल - कुसुमों से विरचित ।
रुचिर रत्न क्षिति के अमूल्य सब
        हैं तुझमें चिर-संचित ।
जग की सुन्दर चित्र-पटी पर
        कुशल करों से अङ्कित ।
मानवता की मञ्जु - मूर्त्ति है
        प्रेम - राग से रञ्जित

है शृङ्गारमयी शोभा तू,
करुणा की हमजोली ।
रहती है वात्सल्य-भाव के
रस से भीगी चोली ।
तेरे प्रेम-स्पर्श से पुलकित
आँख जगत ने खोली ।
पर तो भी रह गई अभी तक
निद्रित ही तू भोली !

है स्वामिनी जगत के उर की
प्रेम - राज्य की रानी ।
युग - युग के अगणित क्लेशों की
तू है करुण कहानी ।
मानव-कुल को शक्ति - दायिनी
तू है भव्य भवानी ।
बनती है तू विश्व-विजयिनी
ले आँखों में पानी ।

रोते हुए क्षुधित जग-शिशु की
है माता कल्याणी ।
सदा न्याय - रक्षा के हित तू
है रण में वीराणी ।

दुखी जनों के लिए दया की
तू है कोमल वाणी।
सुधा-सिक्त रहते हैं तुझसे
वसुधा के सब प्राणी।

राग-द्वेष से पूर्ण जगत में
सरस प्रेम की कविता।
अन्धकारमय भूतल में तू
है ज्योतिर्मय सविता।
जग के सुन्दर प्रेम-सदन की
प्रेममयी है वनिता।
तो भी हाय! रही अभागिनी
तू सदैव पद-दलिता।

रोती रही सभी देशों में
तू कुररी-सी दीना।
पावस की विभावरी-सी तू
रही सदैव मलीना।
अखिल विश्व-आनन्द-दायिनी
है आनन्द-विहीना।
गृह-लक्ष्मी होकर भी जग में
रही न तू स्वाधीना।

कल्प-लता जग-नन्दन-वन की
विमल ज्योति भूतल की।
विश्व - मोहिनी है सुगन्धि-सी
सरस पुष्प - परिमल की।
रस-सागर में है विलीन तू
मीन प्रेम के जल की।
है कामिनी ! दामिनी - सी तू
भव - दुख - दल - बादल की।

किसने चारु चरित्र-विभव में
है तेरी समता की।
है तू वर - सम्पत्ति - शालिनी
दया - क्षमा - ममता की।
है सीमा तू जगतीतल में
कष्ट - सहन - क्षमता की।
जग में छाप लगा दी तूने
अपनी अनुपमता की।

प्राणेश्वरी प्रियतमा जग की
सदा दुखी तू रहती।
जग-जीवन के महासिन्धु में
निरवलम्ब है बहती।

तुझे नहीं चिन्ता है इसकी
क्या दुनिया है कहती।
तू चुपचाप विश्व की सारी
विपदायें है सहती।

अनुरागिनी त्यागिनी बनकर
तू है कीर्त्ति कमाती।
है मानवी, किन्तु देवी तू
है जग में कहलाती।
प्रेम-देव के चरणों पर तू
है सर्वस्व चढ़ाती।
पर वरदान दुःख-क्लेशों का
तू सदैव है पाती।

दुलहिन

अज्ञात प्रेम-गृह में है
नव-वधू पदार्पण करती।
है एक अपरिचित जन को
जीवन-धन अर्पण करती॥

अनजाने हाथों में है
निज भाग्य धरोहर धरती।
जा रही अकेली ही है—
क्या है वह तनिक न डरती ?

निज देश छोड़ सागर से
जाती है सरिता मिलने।
मृदु गोद लता की तज कर
नव-कली चली है खिलने।

रमणियों और मणियों को
तकदीर एक-सी मिलती।
वे कहाँ जन्म लेती हैं
हैं कहाँ पहुँचकर खिलती ?

है गई अङ्क से छीनी
वह दुखी जनक-जननी के।
करुणा से आर्द्र नयन हैं
उस दिवस और रजनी के।

है लदी शोक से आई
लेकर आँसू नयनों में।
थी खेली किन सदनों में,
है पहुँची किन सदनों में?

मृदु नवल लता ऊजड़ कर
निज सुखद जन्म-कानन को।
सुरभित करने आई है,
प्रिय सुन्दर नन्दन वन को।

आनन-सरोज विकसित है
दृग-सरसिज में है पानी।
शृङ्गार तथा करुणा की
है मूर्त्ति सुधा-रस-सानी।

शशि-प्रथम-कला क्रीड़ा कर
कुछ काल गगन-आँगन में।
आई प्रकाश है भरने
सुरपति के सौख्य-सदन में।

विधु की वह आदि-कला है
छवि-रेखा-सी मन भाई।
पर और कलायें भी हैं
लघु तन के मध्य समाई।

शृङ्गार छिपा है उर में
करुणा है भरी नयन में।
है शोक भरा मृदु मन में
लावण्य-लोक है तन में।

सुध स्नेहमूर्ति माता की
है बारम्बार रुलाती।
पर नई प्रीति आकर है,
सान्त्वना उसे दे जाती।

है छूट गया गुड़ियों का
खेलना सरल सुखदायी।
अब नये खेल की बारी
उसके जीवन में आई।

निज जीवन-आभरणों को,
हैं स्वयं उसी को गढ़ना।
इस नई पाठशाला में
है पाठ प्रेम का पढ़ना।

अब बालपने की सारी
बातें हो गई पुरानी।
युग हृदय लिखेंगे मिल कर
जीवन की नई कहानी।

अविरल दृग-जल से सिंच कर
मृदु हृदय-कली है खिलती।
करुणा की सरिता बह कर
है प्रेम-सिन्धु में मिलती।

जीवन - प्रभात में ऊषा
दुलहिन बनकर है आई।
है छिपा प्रकाश अपरिमित
उसमें सुन्दर सुखदायी।

सुख-सूर्य्य उदय होगा ही,
अरुणोदय है जीवन का।
विकसित होनेवाला है
आनन-सरोज यौवन का।

है लुप्त कौन अभिलाषा,
उसके अति कोमल मन में ?
कुछ भेद अवश्य छिपा है
नत लाज-भरी चितवन में।

शरमीली छुईमुई - सी
नन्हीं नादान अजानी।
आई है बनने के हित
उर-रुचिर-राज्य की रानी।

है हृदय-देश पर करना
शासन, क्या-क्या साधन हैं ?
शुचि प्रेम भव्य भोलापन,
अमृतोपम मधुर वचन हैं।

मन्त्री बस सदय हृदय है
उपमन्त्री कोमल मन है।
शुचि सत्य शील ही बल है,
धन केवल जीवन-धन है।

परदे में

हैं परदे में बालायें
मृदु-मञ्जुल मणि-मालायें।
सुरराज-सदन-सी सुन्दर
हैं सजी रंग-शालायें।

ज्योतियाँ रुचिर रत्नों की
    हैं जगमग-जगमग जगतीं।
परदे के भीतर प्रतिदिन
    हैं इन्द्र-सभायें लगतीं।

शशि की कल-कोमल किरणें
    हैं कभी न बाहर आतीं।
परदे के भीतर ही वे
    हैं सुधा-वारि बरसातीं।

परदे में सुख का घर है
    सम्पदा स्वयम् है चेरी।
पर दुःख-शोक भी हरदम
    हैं वहाँ लगाते फेरी।

जीवन जीवन के सुख को
    अपने ही से खोता है।
मृदुता का कठोरता से
    दुख-मूल मिलन होता है।

कितनी ही कोमल कलियाँ
मुँह को भी खोल न पातीं।
हो दलित कठोर करों से
मुरझा कर हैं झड़ जातीं।

शुचि ज्ञान-भानु उर में ही
है सदा छिपा रह जाता।
उसका प्रकाश अवनी में
है कभी न होने पाता।

गंगा-यमुना की धारा
बहती सूने सदनों में।
परदे के भीतर सागर
लहराता है नयनों में।

कोयलें क़ैद पिञ्जर में
सिर धुन-धुन कर हैं रोतीं।
सुमनों की सुख-शय्या पर
हैं विरह-व्यथायें सोतीं।

परदे के भीतर कोई
है कभी न जाने पाता।
तो भी ईर्षानल जाकर
है कोमल हृदय जलाता।

लोनी - लोनी लतिकायें
दुख के तुषार की मारी।
हैं नित्य सूखती जाती
भोली भाली बेचारी।

हैं गूँज रहीं परदे में
कितनी ही क्लेश-कथायें।
महलों के भीतर छिप कर
रहती हैं विविध व्यथायें।

साथ ही साथ रहती हैं
अबलायें और बलायें।
शशि की कमनीय कलायें
घन की घनघोर घटायें।

कहती हैं करुण कहानी
रोकर आँखें बेचारी।
उत्तर उनको मिलता है
लाचारी है लाचारी।

लज्जा का निठुर करों से
है गला दबाया जाता।
सुख से वञ्चित बेचारा
है प्यार ठोकरें खाता।

करुणा की करुण पुकारें
दीवारों से टकरातीं।
मन की सब अभिलाषायें
मन में ही हैं रह जातीं।

हैं झूम रही मस्ती से
मस्ती की ही तसवीरें।
परदे में सिर धुनती हैं
कितनी फूटी तक़दीरें।

काजल के काले-काले
गिरते हैं आँसू-मोती।
घर के भीतर कोनों में
हैं दीप-शिखायें रोती।

उर-तन्त्री के तारों को
है बारम्बार बजाती।
अन्तर्वेदना व्यथा के
है नीरव गाने गाती।

रजनी में दिन रहता है
दिन में रजनी है काली।
परदे में छिपी हुई है
दुनिया ही एक निराली।

व्रज-बाला

तेरे मानस-मन्दिर में
किसकी पूजा है होती ?
भावों की सुख-शय्या पर
किसकी मृदु-स्मृति है सोती ?

गम्भीर नीर-निधि में है
नीरवता रहती जैसे,
वेदना छिपी क्या कोई
तेरे उर में है वैसे ?

चिर सुख के वासस्थल में
तू कौन दुःख है सहती ?
आनन्द-अम्बुनिधि में भी
तू क्यों प्यासी है रहती ?

तेरे सस्मित अधरों पर
है किस विषाद की रेखा ?
है छिपा कौन शोभा-निधि
तेरे उर में अनदेखा ?

पति की गोदी में लेटी
तू किसे याद है करती ?
सुमनों की सुख-शय्या पर
क्यों आह सदा है भरती ?

उन्मना दीखती है क्यों
तू प्रचुर-प्रेम-बन्धन में ?
वासना कौन अन्तर्हित
है तेरे मनोभवन में ?

हो प्रेम-सुधा-सिञ्चित भी
तू क्यों न प्रफुल्लित रहती ?
तेरे उर में हरदम क्या
उलटी गंगा है बहती ?

तेरी मधु की प्याली में
है किसने विष-रस घोला ?
तेरी मृदु-उर-वल्ली पर
है गिरा कहाँ से ओला ?

तेरे विलोचनों में है
किस छवि की छटा समाई ?
यत्नों से भी किसको सुध
है जाती नहीं भुलाई ?

मृदु भावों की लहरों से
होकर नर्त्तित मदमाता,
तेरा उर-सागर किसका
अनुराग-राग है गाता ?

जब प्रेम-स्पर्श पुलकित हो
तू मूँद दृगों को लेती,
किसकी मधुर स्मृति आकर
तब तुझे जगा है देती ?

थपकी देकर मलयानिल
जब तुझे सुला है जाती,
सपने की कौन कहानी,
तब तुझे रुला है जाती,

सुख की लहरों में बहता
तेरा अतृप्त उर-सागर,
किस सुध-समीर से दोलित
कँपता रहता है थर-थर ?

करके सर्वस्व समर्पण
क्या मोल लिया है तूने ?
तन किसे दिया है तूने
मन किसे दिया है तूने ?

इस शुभ्र शरद्-रजनी में
तू क्यों उदास है दिखती ?
एकान्त बैठ आँसू से
तू किसे पत्र है लिखती ?

मधु-ऋतु लाकर निज निधियाँ
है तुझे भेंट कर जाती,
तो भी तेरी मन-कलिका
क्यों नहीं भला खिल पाती ?

जो बालपने में तूने
था पिया प्रेम-रस प्याला,
क्या किया उसी ने तेरा
मन यौवन में मतवाला ?

क्या साथ-साथ माखन के
माधव ने मन भी तेरा—
था चुरा लिया व्रज-बाले,
मधुपुर में किया बसेरा ?

जो कुञ्जगली में तुझको
कङ्कड़ी श्याम ने मारी,
क्या कसक रही वह अब भी
तेरे उर में सुकुमारी ?

आता था जो तेरे घर
होता था जहाँ सवेरा,
वह वेणु बजानेवाला
गोपाल कहाँ है तेरा ?

गो-धूलि साथ गोगण के
अब भी व्रज में है आती,
क्यों तू उसके स्वागत को
अब नहीं दौड़ कर जाती ?

कर मान न अब तू मानिनि !
    है कौन मनानेवाला,
तेरे कोमल चरणों पर
    निज शीश झुकानेवाला ?

क्या कभी भूल सकती तू
    पनघट का आना-जाना,
रस-सागर नट-नागर का
    गागर का वहाँ गिराना ?

क्या भूलेगी गायों का
    वह दुहना और दुहाना,
चितवन की मृदु डोरी से,
    दो हृदयों का बँध जाना ?

जा खोज कहीं कुञ्जों में
    हो छिपा नहीं वनमाली।
मत डरना लता समझ जो
    ले घेर तुझे मधुपाली।

प्रति गेह गली गिरि वन में
    हैं चिह्न श्याम के मिलते।
हर लता वृक्ष वल्ली में
    स्मृति के प्रसून हैं खिलते।

आहें भरती रहती हैं
    नित चटक-चटक कर कलियाँ।
सुमनों के अश्रु गिरा कर
    रोती हैं वृक्षावलियाँ।

ले तुझे डाल गलबाहीं
    झूले जिस पर वनमाली,
है झुकी दुःख से तेरे
    सूनी कदम्ब की डाली।

है निरा व्यर्थ व्रज-बाले!
    यह तेरा मौन विलपना।
तूने जिसको सच माना
    वह निकला केवल सपना।

क्या कभी किसी की रहती
हैं बालपने की बातें ?
सब काल बदलती रहती
हैं जीवन की दिन-रातें।

वनमाल पहन कर बाले!
तू वनमाली कहला ले।
धर ध्यान श्याम का मन में
तू अपना मन बहला ले।

मृदु मोर-मुकुट धारण कर
बर बसन पहन कर पीले।
प्रिय वंशी बजा रसीली
बन जा तू श्याम रसीले।

केवल शरीर है तेरा
वृन्दावन में व्रज-बाले!
मन तो मधुपुर में पीता
है सदा प्रेम-मधु-प्याले।

कह दे यमुना से जाकर
तेरा सन्देश सुना दे।
उलटी बह कर मथुरा से
शुभ समाचार भी ला दे।

व्रजवल्लभ को भी तेरी
क्या याद कभी है आती ?
तू व्यर्थ निदाघ-लता-सी
है नित्य सूखती जाती।

आवेंगी कभी नहीं फिर
वे रास-रंग की रातें।
तू उन्हें भुला दे बाले !
हैं वे सपने की बातें।

सुख-अम्बर में दुख-घन का
गर्जन है जीवन तेरा।
तेरे अशान्तिमय उर का
स्पन्दन है जीवन तेरा।

कह सकती भी न कभी कुछ
तू है ऐसी दीवानी।
परवशता ही है तेरे
जीवन की करुण कहानी।

देव-दासी

तेरे मञ्जु मनोमन्दिर में
करके पावन प्रेम-प्रकाश ।
करता है वसु-याम सुन्दरी
कौन दिव्य देवता निवास ?

वार दिया है जिस पर तूने
तन-मन-जीवन सभी प्रकार,
कभी दिखाता है क्या वह भी
तुझे तनिक भी अपना प्यार ?

बनी चकोरी है तू जिसकी
कहाँ छिप रहा है वह चन्द ?
है किस पर अवलम्बित बाले!
तेरे जीवन का आनन्द ?

किस प्रियतम की प्रतिमा को तू
करती है सहर्ष उर-दान ?
हो जाती है तृप्त चित्त में
तू करके किसका आह्वान ?

पुष्पहार तू इष्टदेव को
देती है प्रतिदिन उपहार,
पर क्या वह बनता है तेरा
कभी मनोज्ञ गले का हार ?

तेरे सम्मुख ही रहते हैं
सन्तत मूर्तिमान भगवान,
करती रहती है वरानने,
फिर तू किसका हरदम ध्यान ?

किस प्रतिमा के दर्शन पाकर
होता है तुझको उल्लास ?
सच कह, क्या बुझती है उससे
तेरे प्यासे उर की प्यास ?

किसे रिझाने तू जाती है
करके नये-नये शृङ्गार,
और लौटती है तू उससे
लेकर कौन प्रेम-उपहार ?

शोभामयी शरद-रजनी में
बन कर नटवर तेरे नाथ,
रुचिर रास-लीला करते हैं
कभी तुझे क्या लेकर साथ ?

क्या वसंत में धारण करके
मंजुल वनमाली का वेष,
तेरा विरह-ताप हरने को,
आते हैं तेरे हृदयेश ?

होती थीं व्रज की बालायें
बे-सुध कर जिसका रस-पान,
क्यों न सुनाता है मुरलीधर
तुझको वह मुरली की तान ?

हरनेवाले मान मानिनी
राधारानी के रस-खान,
क्या तुझको भी कभी मनाते
जब तू कर लेती है मान ?

पाने को प्रभु की प्रसन्नता
करती है तू सतत प्रयास।
रहती है तू सदा छिपाये
उर में कौन गुप्त अभिलाष ?

क्या प्रतिमा के पूजन से ही
होता है तुझको संतोष ?
क्या न कभी आता है तन्वी !
तुझे भाग्य पर अपने रोष ?

करके निर्भयता से तेरे
अनुपम अधरामृत का पान,
कहाँ गगन में छिप जाते हैं
बाले ! तेरे मधुमय गान ?

छा जाती है प्रतिमाओं पर
एक नई द्युति पुलक समान—
कैसी ज्योति जगा देती है
तेरी मधुर-मधुर मुसकान !

तुझे अशान्त बना देती है
तेरे उर की कौन उमंग ?
है किस ओर खींचती तुझको
तेरे मन की तरल तरंग ?

हर के रोषानल में जलकर
हुआ मनोभव जो था क्षार,
तुझे उन्हीं के मन्दिर में क्या
वह देता है क्लेश अपार ?

प्रेम-वञ्चिता होने पर भी
तू दिखती है पुलकित गात।
किस कल्पना-लोक में विचरण
करती रहती है दिन-रात ?

तूने ली है मोल दासता
करके निज सर्वस्व-प्रदान।
रो उठता है हृदय, देख कर
यह तेरा विचित्र बलिदान।

भिखारिनी

फटे वसन में लाज छिपाये
मन में चिन्ता भारी।
कहाँ जा रही धीरे - धीरे
तू भिखारिनी नारी ?

दो पैसे के लिए आज तू
क्यों है धीरज खोती ?
लुटा चुकी है तू जीवन में
अगणित मन के मोती।

भव-वैभव को तू चरणों से
थी सदैव ठुकराती।
किन्तु आज सबके सम्मुख तू
है दीनता दिखाती।

मृदु मखमली सेज पर भी थी,
तुझको नींद न आती।
किन्तु कठोर भूमि-शय्या पर
है अब रात बिताती।

थी प्रियतम की हृदय-वासिनी
तू प्राणोपम प्यारी।
पर तू आज घूमती दर-दर
है विपत्ति की मारी।

प्रेम-पुष्प तेरे चरणों पर
था जग सदा चढ़ाता।
पर अब तेरी ओर आँख भी
कोई नहीं उठाता।

रहा नहीं अब प्यारा तेरा
रहा नहीं दृग-तारा।
है तेरे जीवन की जग में
लकुटी एक सहारा।

लोचन-युत भी तू अन्धी है,
बुद्धिमती भी पागल।
कैसे देख सके तू जग को,
प्रतिबन्धक है दुख-दल।

कहाँ रजत-रजनी है तेरी
कहाँ दिवस सोने का ?
अब तो समय तुझे आया है,
सिर धुन-धुन रोने का।

शक्ति नहीं है तन में तेरे
 है आसक्ति न मन में।
मृत्यु-कामना शेष रही है
 अब तेरे जीवन में।

सीता

मिथिलाधिप की सुता लाड़ली
कोमल - कान्त - विनीता।
बली यशस्वी कोशलेश की
प्रिय - भार्या परिणीता।
छवि अनिन्दिता विश्व-वन्दिता
वनिता परम पुनीता।
दुःख-भोगिनी रही सर्वदा
प्रेम - योगिनी सीता।

जनक भूप के राज-भवन में
क्रीड़ा करनेवाली।
रति-सी और रमा-सी अनुपम
शोभामयी निराली।
प्रिय-मानस की मञ्जु मराली
वह थी भोली-भाली।
घिरती ही रह गईं घटायें
उस पर काली-काली।

प्राणनाथ ने किया वन-गमन
मान पिता-अनुशासन।
था अभिषेक-समय में कैसा
दुखमय वह निर्वासन!
पति के साथ त्याग भव-वैभव
सुखद राज - सिंहासन,
वन-निवासिनी बन कर उसने
ग्रहण किया कुश-आसन।

सुमनों की शय्या तज कर वह
भूमि-सेज पर सोई।
दुख में भी उसने सुख माना
कभी न पल भर रोई।

परिचारिका और परिचारक
साथ नहीं था कोई।
पर न तनिक भी वह घबराई
बुद्धि न उसने खोई।

सुरभित पवन और निर्मल जल
तरु की शीतल छाया,
उसने पहले ही जीवन में
यह वर वैभव पाया।
ऋषि-कन्याओं ने हिल-मिल कर
उससे प्रेम बढ़ाया।
पशु-पक्षी द्रुम-लता आदि ने
आदर उसे दिखाया।

हरे-भरे सुन्दर वन में वह
थी स्वच्छन्द विचरती।
चुभते थे कुश-कण्टक तो भी,
थी न तनिक भी डरती।
राजहंसिनी-सी सरवर में
थी विहार वह करती।
खिले सरोजों को कौतुक-वश
थी आँचल में भरती।

मृग-शावक को कभी गोद में
लेकर थी सहलाती।
कभी कपोती को निज कोमल
कर पर थी बिठलाती।
केश-राशि फहरा मोरों को
थी वह कभी नचाती।
कभी चकोरी को दिखला कर
शशि-मुख थी भरमाती।

मृदुल अंक में प्राणनाथ के
थी वह सुख से सोती,
किन्तु चौंक कर जग जाने पर
वह उदास थी होती।
देख उर्मिला को सपने में
विरह-व्यथा से रोती,
भूल विपिन का सुख-विलास सब
थी वह धीरज खोती।

कौशल्या माता की ममता
थी न भुलाई जाती,
सुत-वियोग से उनका रोना
पीट-पीट कर छाती।

उनकी याद यहाँ भी उसको,
बार-बार थी आती।
उसके हृदय-रत्न जीवन-धन
थे बस उनकी थाती।

खिन्न देख कर उसे राम भी
थे व्याकुल हो जाते।
पर निज व्यथित हृदय के हरदम
थे वे भाव छिपाते।
पोंछ विलोचन-वारि प्रेम से
उसको गले लगाते।
प्रेम-कहानी सुना-सुना कर
थे वे जी बहलाते।

खिलती कभी, कभी मुरझाती
थी वह लतिका मृदु-तन।
पति के प्रेम-वारि से सिंच कर,
रहती थी हर्षित-मन।
किन्तु नहीं चल सका बहुत दिन
वह सुख-दुखमय जीवन।
उसके तप्त आँसुओं ने ही
क्या रच दिये सघन घन?

लङ्काधिप ने उस अबला का
किया हरण छल-बल से।
वह करुणा की मूर्त्ति बन गई,
भीगी लोचन-जल से।
रो-सी उठीं दिशायें सारी
सागर की हलचल से।
अथवा आहें निकल रही थीं
व्याकुल धरणी-तल से।

जो सर्वस्व त्याग कर भी थे
हुए न विचलित मन में।
वही धीर रघुवीर फिर रहे
थे पागल-से वन में।
हुई नहीं थी कभी प्रिया की
विरह-व्यथा जीवन में।
वे इस भाँति विकल थे मानों
प्राण नहीं थे तन में।

कहते थे वे विटप-विटप से
भर कर नीर नयन में।
"सखे ! बताओ छिपी जनकजा
है किस कुञ्ज-भवन में ?

आज अकेली वासन्ती तू,
है झूमती पवन में,
कहाँ गई है सजनी तेरी,
मुझे छोड़ कानन में?"

लगे सोचने राम शोक से
होकर विह्वल मन में,
क्या वह विद्युत्लता छिप गई,
जाकर नन्दन-वन में?
अथवा देख मञ्जु मुख उसका
अनुपम भोलेपन में,
लज्जित शशि ने छिपा दिया है
उसको शून्य गगन में।

खोज-खोज थक गये प्रिया को
पर न राम ने पाया।
सन्ध्या हुई घोर तम उनके
उर का जग में छाया।
तब लक्ष्मण को सम्बोधन कर
दारुण दुःख सुनाया।
शोक-सिन्धु निर्जन वन में भी
शीघ्र उमड़-सा आया।

"महामहिम मिथिला-नरेश की
वह प्राणोपम कन्या,
शीलवती कुलवती छविमती
अनुपम गुण-गण-धन्या;
त्रिभुवन में लक्ष्मण ! है वैसी
कौन सुन्दरी अन्या ?
धिक् धिक् मैं जीवित हूँ अब तक
खोकर प्रिया अनन्या !

लक्ष्मण ! अब मैं घोर विपिन में
कहाँ चैन पाऊँगा ?
पर सीता के बिना अयोध्या
भी कैसे जाऊँगा ?
कौशल्या माता को किस विधि,
मैं मुँह दिखलाऊँगा ?
जब पूछेगी कुशल-प्रश्न वह,
क्या मैं बतलाऊँगा ?

भरत और शत्रुघ्न आदि से
क्या मैं भला कहूँगा ?
सब स्वजनों के सम्मुख कैसे
मैं स्थिर - धीर रहूँगा ?

यह असह्य वेदना विरह की
  मैं किस भाँति सहूँगा ?
एकाकी जीवन-सागर में
  कब तक हाय, बहूँगा ?

नृप विदेह जिनको सीता थी
  सदा प्राण-सम प्यारी,
होंगे कितने विकल श्रवण कर,
  सुता - हरण दुखकारी ?
उनको समाचार यह भेजूँ
  किस विधि मैं वनचारी ?
लक्ष्मण ! तुम्हीं बताओ मेरी
  बुद्धि गई है मारी।"

शोकाकुल निज प्रिय अग्रज को
  लक्ष्मण ने समझाया,
पुनर्मिलन की आशा देकर
  कुछ-कुछ धैर्य बँधाया।
मर्मर के मिस लता-द्रुमों ने
  मानों यह बतलाया—
दुष्ट दशानन ने ले जाकर
  बन्दी उसे बनाया।

भारत-लक्ष्मी बन्दी-गृह में
कब तक बन्द रहेगी ?
यह अन्याय दुष्ट दशमुख का
कब तक मही सहेगी ?
कब तक दुःसह दावानल में
वह मृदु-लता दहेगी ?
कब तक धार कुपित सागर की
लंका में न बहेगी ?

माँ

है जग-जीवन की जननी तू
तेरा जीवन ही है त्याग।
है अमूल्य वैभव वसुधा का
तेरा मूर्तिमान अनुराग।

धूल-धूसरित रत्न जगत का
    है तेरी गोदी का लाल।
है जग-बाल-जलज का रक्षक
    माँ, तेरा मृदु बाहु-मृणाल।

कितनी घोर तपस्या करके
    पाती है तू यह वरदान?
किन्तु विश्व को अनायास ही
    कर देती है उसे प्रदान।

है तुझसे ही लालित-पालित
    यह भोला-भाला संसार।
करती है प्लावित वसुधा को
    तेरी प्रेम-सुधा की धार।

तेरे दिव्य हृदय में जिसका
    रहता है सदैव सञ्चार।
लिये अंक में मृदुल सुमन को
    लता दिखाती है वह प्यार।

वनस्थली के अंग-अंग में
होता तेरा प्रेम-विकास।
नव-वसन्त उसके आँगन में
जब क्रीडा करता सोल्लास।

बाल-विहग के लिए विहङ्गी
तृण से भर कर नीड़ सहर्ष,
दिखलाती है जगतीतल में
तेरा प्रेम-विभव-उत्कर्ष।

आधि-व्याधि के तीक्ष्ण ताप से
रहता है सदैव जो म्लान,
तेरे प्रेम-वारि से सिँच कर
खिलता है जग का उद्यान।

मानवता है मूर्तिमती तू
भव्य-भाव - भूषण-भाण्डार,
दया क्षमा ममता की आकर
विश्व-प्रेम की है आधार।

तेरी करुण साधना का माँ,
है मातृत्व स्वयं उपहार।
क्षुधित देख असहाय विश्व को
बहती है उर से पय-धार।

है करुणा की कालिन्दी तू
वत्सलता की सुर-सरि-धार।
है आशीष पवित्र हृदय का
तेरा अनुपम प्यार-दुलार।

सुत-वियोग-दुख से विह्वल हो
रोते हैं माँ, तेरे प्राण।
किन्तु सभी कुछ सह लेती तू
हो जिससे जग का कल्याण।

उच्छ्वास

कुछ ही दिन के लिए रहा वह
जीवन का उल्लास।
थोड़ा-सा प्रकाश करके ही
हुआ विलीन प्रकाश।

हुआ विकास किन्तु लाया वह
शीघ्र अकाल विनाश।
शैशव का वैभव दिखला कर,
छिपा चन्द्र का हास।

जहाँ सदा अनुराग अतुल था,
क्यों है वहाँ विराग?
स्नेह बहुत बढ़ गया इसी से
क्या बुझ गया चिराग?

सूख गया किस भाँति अचानक
विपुल विनोद-तड़ाग?
जीवन-सरिता के जीवन में
धधक उठी है आग।

क्या देखा क्या सुना सुमन ने
किया कौन सुख भोग?
ज्यों ही खिलने लगा खोल मुख
त्यों ही हुआ वियोग।

चला नहीं कुछ भी वश, आया
काम न कोई यत्न।
रहे देखते ही तो भी खो
गया हृदय का रत्न।

कितनी ही मृदु साधें मन की
कितने ही आनन्द,
लेता गया साथ में अपने
एक मञ्जु लघु चन्द।

छोड़ मुलायम गोद लता की,
और सुनहली डाल,
क्यों मिट्टी की सेज सुमन ने
की पसन्द विकराल?

कहाँ गया तज मानसरोवर
वह लघु मृदुल मराल?
किसके साथ करें क्रीड़ा अब,
सरोजिनी के बाल?

था अमूल्य धन ललित-लता का
वह प्रसून छविमंत।
पर आया उसके जीवन में
दो ही बार वसंत।

था कितना दुखमय निदाघ का
निर्दय काल कराल?
छीन ले गया मृदु लतिका की
गोदी का वह लाल।

छिपा प्रकाश, हो गया दिन भी
निपट अँधेरी रात।
बनकर भाप उसाँसें उर की,
लाई हैं बरसात।

अभागिनी

माँ के समीप तू सोई थी
सौभाग्य-सूर्य जब उदय हुआ।
तू चली आरती जब लेकर
तेरे जीवन में प्रलय हुआ।

पूजा की सारी सामग्री
रह गई जहाँ की तहाँ वहीं।
पर प्रिय-पूजा का अधिकारी,
अवनी में कोई रहा नहीं।

हम कितने दिन के लिए कहें
दो मृदु हृदयों का मिलन हुआ?
क्या है जग में रह गया तुझे,
जीवन-धन का ही निधन हुआ!

जब प्रेम-मिलन की चाह हुई,
तब चिर-वियोग की व्यथा हुई।
ज्यों ही उसका आरम्भ हुआ,
त्यों ही समाप्त वह कथा हुई।

खिलते ही मुरझा गई हाय,
तू भोली-भाली नई कली।
किस निठुर नियति के हाथों से
तू इस प्रकार है गई छली?

अनुराग नया, अभिलाष नया,
व्यवहार नया, शृंगार नया—
पल भर में सहसा लुप्त हुआ,
वह सोने का संसार नया।

तू कभी नहीं कुछ कहती है,
चुपचाप सभी कुछ सहती है।
जग में रस-धारा बहती है,
पर तू प्यासी ही रहती है।

तेरे मन में ही छिपी हुई
रोती हैं सब चाहें तेरी।
उर के भीतर ही गूँज-गूँज
रह जाती हैं आहें तेरी।

तेरे अशान्त उर-सागर में
दुख का प्रवाह ही बहता है।
जीवन-प्रदीप तेरा, बाले!
सब काल बुझा-सा रहता है।

चढ़ते सूरज की आदर से
सब दुनिया पूजा करती है,
पर अस्त हो गये दिनकर पर
बस तू ही जग में मरती है।

है कौन समझ सकता, बाले !
तेरी दुनिया की बातों को—
तेरे सन्ताप-भरे उर की
मृदु घातों को प्रतिघातों को ?

चुकती है नहीं निशा तेरी,
है कभी प्रभात नहीं होता।
तेरे सुहाग का सुख, बाले !
आजीवन रहता है सोता।

हैं फूल फूल जाते मधु में,
सुरभित मलयानिल बहती है।
सब लता-वल्लियाँ खिलती हैं,
बस तू मुरझाई रहती है।

शुचि विफल-प्रेम की ज्वाला में
तू प्रति पल जलती रहती है।
अपने मृदु भाव-प्रसूनों को
तू नित्य कुचलती रहती है।

उर को सँभालती रहती है,
मन को मसोसती रहती है।
निज लोलुप लोल-विलोचन को
तू सदा कोसती रहती है।

सुन्दर सरोज को घेर-घेर,
मधुपावलियाँ मँड़राती हैं।
वह दृश्य देख कर, क्यों बाले !
तेरी आँखें भर आती हैं ?

वल्लरी लिपट कर तरुवर से
जब फूली नहीं समाती है,
उस प्रेमालिङ्गन को विलोक
क्यों तू उदास हो जाती है ?

लुट गया हाय .सब कुछ तेरा,
जग में किसकी यों लूट हुई ?
सुख-सामग्री जगतीतल की
तेरे हित विष की घूँट हुई।

बस मूल-मंत्र है त्याग तुझे,
है और वस्तु का ध्यान नहीं।
इस दुनिया में है हुआ तुझे,
अपनेपन का भी ज्ञान नहीं।

अविरल दृग-जल का स्रोत चपल
है तेरे जीवन का पल-पल।
भीगा ही रहता है हरदम
हा! तुझ अभागिनी का अंचल।

सब आशायें अभिलाषायें
उर-कारागृह में बन्द हुईं।
तेरे मन की दुख-ज्वालायें
मेरे मन में कुछ छन्द हुईं।

किस कवि में है यह शक्ति भला,
कह दे आन्तरिक व्यथा तेरी ?
उर-तल से निकली आहों ने
लिख दी है क्लेश-कथा तेरी।

वाराङ्गना

धन के बदले जीवन-धन की
तूंने हाय, करा दी लूट।
सुधा पिलाती है औरों को
पीकर स्वयं गरल के घूंट।

आत्म-हनन में कौन स्वार्थ है,
सर्वनाश है क्या परमार्थ ?
विश्व-विमोहन रूप अलौकिक
बना एक है पण्य-पदार्थ।

यह विचार कर क्या होता है
कभी नहीं तुझको अनुताप ?
निज अमूल्य जीवन पर तूने
लगा मूल्य की दी है छाप।

होता है जग मुग्ध देख कर
तेरा नित नवीन शृङ्गार।
कौन कभी सुनता है, बाले !
तेरे उर का हाहाकार ?

सच बतला, क्या अपने मन में
रहती है तू कभी प्रसन्न।
तरुणी ! तेरे इस जीवन में
कितनी करुणा है प्रच्छन्न ?

देख रहा है दृश्य चकित हो
    उठा-उठा कर सिर वागीश।
अपराधिनी समान खड़ी है,
    तू सुन्दरी झुका कर शीश।

तेरे जीवन के सुख-साधन
    हैं जग-जीवन के अभिशाप।
अतिशय आकर्षक बनता है
    तुझमें मूर्त्तिमान हो पाप।

जहाँ विलास वहीं क्रन्दन भी,
    जिससे घृणा उसी से प्यार—
है तेरा जीवन विचित्र ही,
    है विचित्र तेरा संसार!

क्या तेरा सम्बन्ध जगत से,
    जिसने तुझे दिया है त्याग?
जो करता है घृणा उसी से,
    कैसे हो तेरा अनुराग?

होकर भी सम्पत्ति-शालिनी
महा अकिञ्चन तू है दीन।
तू है रूप-राशि शशि-वदनी,
पर है अन्तर्ज्योतिविहीन।

पङ्किल पङ्कज मञ्जु कली का
तू ही है जग में उपमान।
है कलङ्किनी चन्द्र-कला-सी
तू भी मञ्जुलता की खान।

बिँधी कण्टकों से कलिका-सी,
हँसती तू भी है सोल्लास।
उर की मार्मिक व्यथा छिपाकर
करती है नित हास-विलास।

यह निर्दय संसार सर्वदा
तुझ पर कीचड़ रहा उलीच।
प्रेम-वारि से भी क्या तुझको
दिया किसी ने आकर सींच ?

रही खोजती सदा किन्तु क्या
मिला तुझे तेरा हृदयेश ?
कभी किसी ने तुझे सुनाया
क्या निज प्राणों का सन्देश ?

है तेरी प्रगल्भता में भी
छिपा हुआ लज्जा का भाव।
किसी रत्न का तुझे खटकता
रहता है सब काल अभाव।

निज जीवन में कभी न पाया
तूने जीवन का आनन्द।
खुले हुए भी सदा रह गये
तेरे लोल विलोचन बन्द।

सना हृदय के नयन-नीर से
है तेरा उल्लास-विलास।
छिपा हुआ रह गया सर्वदा
तेरे उर का विमल प्रकाश।

रस-सागर में हो निमग्न भी
तू रह गई सदैव सतृष्ण।
कैसे प्यास बुझे जीवन की ?
मिला न तुझको तेरा कृष्ण।

वसुधा के शुचि स्वर्ग-सदन में
कभी न तेरा हुआ निवास।
रवि-शशि के रहते भी तूने
देखा बस सूना आकाश।

यह विचार करने का तुझको
मिला नहीं जग में अवकाश—
है अज्ञात-रूप से तेरे
उर में छिपा कौन अभिलाष।

कभी-कभी तेरे मन में भी
जग उठता है आत्म-विरोध।
सुमनों की शय्या पर भी तू
करती है कण्टक का बोध।

तेरे जीवन का वरानने !
हैं कैसा विचित्र इतिहास ?
जो औरों का सुख-विलास है,
वह है तेरा सत्यानाश ।

प्रेम की जीत

निकले सच्चे प्रेम-पुजारी
तुम हे चण्डीदास !
दिया प्रियतमा की प्रतिमा को
उर-मन्दिर में वास ।

रजक-सुता रामी से होता
क्यों न तुम्हारा प्यार ?
तन मन प्राण सहर्ष दिया था
उसने तुम पर वार।

है न तुम्हारे प्रेम-राज्य में
तनिक भेद का भाव।
भय शङ्का अपवाद नहीं है,
या पछताव दुराव।

क्या कर लेगी जग-निन्दा की
मेघ - घटा घनघोर ?
रामी के मृदु मुख-मयङ्क के
तुम हो बने चकोर।

कर ले मूढ़ वृथा अभिमानी
जग जी भर अपवाद।
हृदयस्थित परमेश्वर तुमको
देंगे आशीर्वाद।

रामी ही इस विपुल विश्व में
है तुमको आधार।
वही प्राण तन मन धन जीवन
और वही संसार।

विश्व-सिन्धु में नाव तुम्हारी
कभी न होती पार,
रामी को शुचि प्रीति न बनती
यदि उसकी पतवार।

हुआ जगत को प्रेम तुम्हारा
सुरभित पुष्प - पराग।
मिला तुम्हें अनुराग विश्व का,
जिसे दिया था त्याग।

करता है जिसके पाने को
यह जग सतत प्रयत्न,
धन्य हो गये तुम जीवन में
पाकर रमणी - रत्न।

तुम्हें रह गया अब पाने को,
क्या इस जग में शेष ?
प्रेम-राज्य ही तुम्हें मिल गया
सुख-सुषमा का देश।

चिन्तित तुम्हें किये रहता है,
केवल एक विचार—
व्यथित न हो रामी प्यारी का,
विमल हृदय सुकुमार।

साधु ! तुम्हारे विमल प्रेम ने
किया विमल संसार।
रामी का मृदु सुख-स्पर्श ही
है उसका उपहार।

लहराता उर-उदधि तुम्हारा
है स्वच्छन्द अपार।
जो दे चुके प्रेम को उस पर
है किसका अधिकार ?

तुमने पाई विश्व-बन्धुता
होकर बन्धन-हीन।
पक्षी निकल गया पिँजड़े से
अब वह है स्वाधीन।

गा लो गा लो जी भर गा लो
स्वर्गिक सुख के गीत।
हुई अन्त में वीर! तुम्हारे
सत्य प्रेम की जीत।

अपना सुख सर्वस्व विश्व को,
तुमने किया प्रदान।
गूँजेंगे सब काल, अमर कवि!
अमर तुम्हारे गान।

आंधी

क्या सोच रही है बाले !
बैठी तू शून्य सदन में ?
किसकी सुध से आकुल-सी
तू हो उठती है मन में ?

कर बंद दृगों को संतत
है कौन तपस्या करती ?
किस मंजु अदेखी छवि का
तू ध्यान सदा है धरती ?

करके अनयन प्रिय-दर्शन
तू है न कदापि अघाती।
प्रेमोपचार कर मन में
फूली है नहीं समाती।

निज मुँदे लोचनों में तू
है कौन रहस्य छिपाये ?
किन भाव-प्रसूनों से तू
है उर-उद्यान सजाये ?

अंधी के लिए अँधेरी
रहती है दुनिया सारी।
किस भाँति देखती है तू
जग की छवि न्यारी-न्यारी ?

तू नयन बिना ही कैसे
प्रिय-छवि-दर्शन कर लेती ?
क्या प्रीति हृदय की तेरे
है खोल दृगों को देती ?

संपुटित नयन - सरसिज में
प्रिय-भृंग छिपा कर बाले !
अर्पण करती रहती है
निज उर के रत्न निराले।

प्रिय की अनुपम छवि तुझको
देती है नहीं दिखाई।
पर शीतल कर देती है
उसको मुख-चन्द्र-जुन्हाई।

विकसित मुख-पङ्कज प्रिय का
तू देख नहीं है पाती।
पर तू उसके सौरभ से
है आमोदित हो जाती।

मृदु मुकुलित कञ्ज-कली-सी
तू है छविमयी निराली।
है मूर्त्तिमती सुंदरता
तू सुन्दरि ! भोली-भाली।

निज छवि से भी तू बाले !
रहती है सदा अपरिचित।
तू क्या जाने वह किसको
कर लेती है आकर्षित ?

कमनीय कुसुम का रस है
अंधी समीर ले जाती।
प्रिय-रूप-सुधा को पीकर
तू भी है नहीं अघाती।

प्रेमी चकोर की चितवन
जिसको है दृष्टि न आती।
उस चन्द्र-कला-सी तू भी
मन ही मन है अकुलाती।

मधु के वियोग में जैसे
    है वनस्थली मुरझाती।
प्रिय-विरह-व्यथा से तू भी
    वैसे ही है कुम्हलाती।

जिसको न कभी पहचाना
    जिसको न कभी है देखा।
उर उसे दे दिया तूने,
    मिट सकी न विधि की रेखा।

अपने एकान्त सदन में
    तू है सदैव घबराती।
प्रिय प्रेम-गीत गा-गा कर
    अपना मन है बहलाती।

संगीत - सुधा - सरिता में
    रहती है सदा समाई।
रह कर ध्यानावस्थित तू
    कहती है कृष्ण कन्हाई।

ले नया जन्म जग में क्या
आई है मीराबाई ?
या सूरदास की आत्मा
है तुझमें शुभे ! समाई ?

स्वामिनी अभाव जगत की
जाग्रत स्वप्नों की रानी।
कल्पित-सुख-मादकता से
तू रहती है दीवानी।

निज उर में ही प्रियतम की
है तूने सेज बिछाई।
बस अंध-भक्ति में तूने
जीवन-सुख-सीमा पाई।

शकुन्तला

जिस आश्रम में नित रहता था
बस सुख-शान्ति-निवास,
वहाँ आज क्यों सब दिखते हैं
चिन्तित और उदास ?

रहता था जो पुण्य-तपोवन
सन्तत कान्त प्रशान्त,
किस पतझड़ के आ जाने से
हुआ आज है क्लान्त ?

एक अपरिचित परिचित नृप का
बस दो दिन का प्यार,
तेरी लघु जीवन-नौका को
छोड़ गया मँझधार।

अमृतमयी प्रिय-प्रेम-मिलन की
प्रथम निशा अज्ञात,
किसे ज्ञात था होगी तेरे
सुख की अन्तिम रात ?

माता और पिता ने तुझको
दिया प्रथम ही त्याग;
निठुर प्राणवल्लभ ने भी अब
छोड़ दिया अनुराग।

थी तू वन की कुसुम-कली-सी
सुखी और स्वाधीन।
किस निष्ठुर ने तुझे कर दिया
अतिशय दीन मलीन-?

कौन कमी थी तुझको वन में
क्या था तुझे अभाव ?
तेरे सहचर पशु-पक्षी भी
थे सब मृदुल-स्वभाव।

मूर्त्तिमान थे कण्व तपोधन
तुझे पिता के स्नेह;
रखती थी गौतमी कृपा ही
तुझ पर निःसन्देह।

तू थी सुखी, सुखी थीं सखियाँ
सुखमय था वनवास।
किस निर्दय ने हरण कर लिया,
मृदु कलियों का हास ?

तुझे लता-द्रुम भी दिखलाते
थे सदैव अनुराग।
इस मनोज्ञ कानन से कैसे
तुझको हुआ विराग ?

तरुणी! तेरा विफल-प्रेम-तरु
है बबूल दुख-मूल।
कण्टक ही कण्टक निकले हैं
हैं न मधुर फल - फूल।

तुझ-सी भोली-भाली बाला
होगी कौन अजान ?
एक अपरिचित जन को तूने
सौंप दिये निज प्राण।

तेरे सुख-सुहाग का सविता
तेजोमय अमलीन—
समुदित होते ही घन तम में
हाय, हो गया लीन !

कानन में स्वच्छन्द विचरती
विहगी पुलकित प्राण,
फँस वञ्चक के प्रेम-जाल में
है मलीन म्रियमाण।

फुल्ल कमल-कानन-विलासिनी
मृदु मरालिनी हाय!
मञ्जु मानसर त्याग मोह-वश
मरती है निरुपाय।

विकसित होते ही मुरझाया
तेरा उर-जलजात।
सु-प्रभात में ही आ पहुँची
निपट अँधेरी रात।

मणि-मण्डित प्रासाद भूप का
सुख-ऐश्वर्य महान,
तेरे लिए, मयङ्क-मुखी! है
केवल स्वप्न-समान।

वल्कल-वसन कठिन कुश-शय्या
और सतत वनवास,
तेरे लिए यही है, तरुणी !
जग में सौख्य-विलास ।

देखा करती तू कानन का
चंचल छाँह-प्रकाश;
प्रतिबिम्बित है जिसमें तेरा
प्रथम - मिलन - उल्लास !

सपने में ही मिलता तुझको,
मिलने का आनन्द ।
तुझे इसी में सुख है, बाले !
रहें सदा दृग बन्द ।

भूल गया नृप पर तू उसको
किस विधि सकती भूल ?
वक्र चन्द्र के भी रहती है
कुमोदिनी अनुकूल ।

सघन छाँह में जहाँ हुआ था,
प्रिय गान्धर्व विवाह;
अब भी बैठ देखती है तू
निज प्रियतम की राह।

यह आश्रम, यह लता-भवन,
यह सुखद चाँदनी रात—
तुझ अभागिनी को होती है
मृत्यु - पुलक - सी ज्ञात।

घेर रहे हैं मुख-सरोज को
अलिगण चारों ओर।
कौन बचावे, आज कहाँ है
तेरे मन का चोर?

आश्रम की खिल गईं लतायें,
आया पुनः वसन्त।
किन्तु नहीं आया है अब भी
तेरा प्रिय दुष्यन्त।

यदि वरती तू ऋषि-कुमार को
देकर जीवन मोल,
देती हृदय किन्तु पाती भी
हृदय-रत्न अनमोल।

सर्वनाश जिसने कर डाला
तुझे न उस पर रोष।
बेचारे बूढ़े विधि को ही
देती है तू दोष।

अनसूया एवं प्रियंवदा
रोती हैं चुपचाप।
भय है कहीं कण्व मुनि सुन कर
दें न भूप को शाप।

बहती हुई दृगों से तेरे,
यह अविरल जल-धार;
गूँथ रही है आज व्यर्थ ही
ये मोती के हार।

देखा करता है मृग-शावक
विस्मित तेरी ओर।
क्या समीर कहती है छूकर
भीगा अञ्चल - छोर .?

है मोरनी नोचती तेरा
मुक्त चिकुर अभिराम।
बाहु-लता पर बैठ कपोती
करती है विश्राम।

गिरिवर-विरह-विकल सरिता के,
तट पर बैठ अजान,
उसके साथ-साथ गाती है
तू वियोग के गान।

लिपट कदम्ब-लता से कहती
है तू मन की बात।
वासन्ती को गले लगा कर
रोती है अज्ञात।

भेज चुकी है तू समीर से
कितने ही सन्देश।
क्या न पवन भी कर पाता है
नृप के निकट प्रवेश ?

प्रिय-मुख-चन्द्र-चकोरी बन कर,
धरती है तू ध्यान।
पल भर दुःख भूल करती है
मधुर सुधा-रस पान।

केवल प्रिय-पद-पूजा की है
तेरे मन में चाह;
और मनोरथ बहा चुका है
लोचन-वारि-प्रवाह।

सुख-भोगिनी रही तू सन्तत
दुःख-भोगिनी आज;
संयोगिनी नहीं पर तू है
प्रेम-योगिनी आज।

है जप-योग एक ही तेरा,
केवल प्रिय-गुण-गान।
तपस्विनी ! करती तू हरदम,
बस प्रियतम का ध्यान।

उपेक्षिता

पहले का सब सुख मेरा
हो गया आज है सपना।
फिर से न कभी जगने को
सो गया भाग्य है अपना।

संयोग सदा रहते भी
मैं हूँ वियोगिनी बाला।
तरु से लिपटी भी लतिका
सहती है उर की ज्वाला।

कैसे सह सकूँ भला मैं
यह हृदय-रत्न की चोरी ?
पहले थी कोरी ही मैं
फिर आज हो गई कोरी।

यह रुचिर रूप की ज्वाला
कैसे घर में घुस आई ?
मेरे जीवन - कानन में
है उसने आग लगाई।

कुछ है जादू - सा करती,
है यह कैसी नादानी।
वह है सुख से दीवानी
मैं हूँ दुख से दीवानी।

कैसा विचित्र अनुशासन
हैं करुणा-वरुणालय का ?
बन गई एक मृदु कलिका
दुख-मूलक शूल हृदय का।

ध्वनियाँ रत्नाभरणों की
सुन कर मैं हूँ घबराती।
सब मूक व्यथायें मन की
मुखरित-सी हैं हो जाती।

यह नई अतिथि कहलाती
शोभा है अंतःपुर की।
पर मुझे ज्ञात होता है
पीड़ा है मेरे उर की।

कैसा धोखा देती है
यह सूरत भोली-भाली ?
हा ! मेरे जीवन-धन की
है यही लूटनेवाली।

निज-निज गृह-सुख की बातें
    जब सखियाँ मुझे सुनातीं।
मैं हृदय थाम रह जाती,
    उनकी आँखें भर आतीं।

जो हृदय-रत्न से हरदम
    था अतिशय आदर पाता।
अब वही प्रेम शुचि मेरा
    है रोज़ ठोकरें खाता।

जो पान सदा करते थे
    छवि का पीयूष निराला।
अब वे ही मेरे दृग हैं
    गूँथते अश्रु की माला।

है टूट गया पल भर में
    चिर-बन्धन मेरे उर का।
अब स्पन्दन मेरे उर का
    है क्रन्दन मेरे उर का।

थाजिसमें अविरत अविरल
शुचि प्रेम-सुधा-रस बहता।
अब हाय ! हृदय वह मेरा
प्यासा हरदम है रहता।

अब भी अविरत बहती है
इस घर में रस की धारा।
पर वञ्चित ही रहता है
यह मेरा दिल बेचारा।

वस्तुएँ सभी इस गृह की
लगती हैं कुम्हलाई-सी।
यह सेज अभागी सूनी
रहती है अकुलाई-सी।

शीशा है पड़ा सदन में
पड़ गई ज्योति है फीकी।
उसमें प्रतिबिम्बित-सी हैं
पीड़ायें मेरे जी की।

प्राणेश देख कर मुझको
थे फूले नहीं समाते।
अब वे ही मुझे निरख कर
हैं आँखें सदा छिपाते।

हो गया अपरिचित जन-सा
जीवन-धन हृदय-निवासी।
रस-सागर के तट पर मैं
रहती सदैव हूँ प्यासी।

मैंने क्या पाप किया था,
क्यों ऐसा दुख है पाया ?
यों फूट-फूट रोती है
हो अलग ब्रह्म से माया।

अनारकली

कमनीय अनारकली जो
थी राजमहल की दासी—
वह बनी कुमार-हृदय की
स्वामिनी प्रेम की प्यासी।

दिव में दिवाङ्गनायें भी
थीं उसे देख कर लज्जित;
छवि के प्रकाश में उसने
नृप-सदन किया आलोकित।

सुकुमार- कुमार- हृदय की
स्वर्गीय प्रेम की प्रतिमा;
ली छीन अनारकली ने
नव-कुसुम-कली की सुषमा।

अपने इस भाग्योदय पर
वह फूली नहीं समाई;
पर निठुर नियति ने आकर
काँटों की सेज बिछाई।

प्रिय से मिलने को सरिता
थी बहती उछल-उछल कर;
पर मिल न सकी सागर से
था खड़ा बीच में भूधर।

कामना-कुसुम तो फूले
पर कभी बहार न आई;
प्रिय-प्रेम- वारि- सिंचित भी
वह हेम-लता मुरझाई।

बन्दी बन गई अभागी
रह सकी न सुख के घर में;
स्वप्नों का स्वर्ण-निकेतन
हो गया नष्ट पल भर में।

युवती की यौवन-सरिता
मिल गई दुःख-सागर में;
जीवन की मधुर उमङ्गें
हो गई बन्द गागर में।

दुर्लभ आकाश-सुमन-सा
था उसे मिलन प्रियतम का;
पर किया प्रेम से पालन
जीवन के प्रेम-नियम का।

पल-पल प्रियतम की झाँकी
देखा करती थी मन में;
बस एक यही सुख पाया
उसने बन्दी जीवन में।

थे छिपे प्रेम-दुख दोनों
उसके भींगे आँचल में;
रहती थी सदा निमज्जित
वह निज अथाह दृग-जल में।

छिप गये मनोरथ-तारे
उर-नभ के दुख-बादल में।
केवल कुमार - स्मृति - चपला
अङ्कित थी अन्तस्तल में।

दुख-दलित प्राण अबला के
थे नहीं निकल भी जाते;
बस प्रेम-पयोनिधि में थे
डूबते और उतराते।

कारागृह से तो छूटी
पर गई अकेली वन में;
ले गई साथ स्मृति कोमल
केवल कुमार की मन में।

प्रासाद-वासिनी भावी
भारत-भूपति की प्यारी;
दुखिया अनार गिरि-वन में
घूमी विपत्ति की मारी॥

थी जहाँ-जहाँ वह जाती
रँगती थी भूमि विपिन में;
पैरों के छाले आँसू
थे बहा रहे दुर्दिन में।

लतिकाओं से वह लिपटी
फूलों को व्यथा सुनाई;
पर कहीं अनारकली ने
थोड़ी भी शान्ति न पाई।

सरिता के शीतल जल में
दिन भर रह गई समाई;
पर शीतलता न तनिक भी
उसके जीवन में आई।

सपने में भी प्रिय-दर्शन
वह कभी नहीं थी पाती;
करने पर भी चेष्टायें
उसको थी नींद न आती।

खाना-पीना सब छोड़ा
ईश्वर में ध्यान लगाया;
तो भी सलीम तरुणी से
जा सका न हाय, भुलाया।

दे सकी न जिसको जीवन
वह बनी न उसकी दासी;
पर हँसी-खुशी से तरुणी
चढ़ गई प्रेम की फाँसी।

पी गई गरल का प्याला
प्रिय-अधर-सुधा की प्यासी;
छिप गई शीघ्र सन्ध्या की
वह करुण-अरुण आभा-सी।

बलिदान

चाह नहीं, उत्साह नहीं है,
हैं कैसा उद्वाह ?
क्षार नीरनिधि में मिलता है
सुरसरि - पुण्य - प्रवाह ।

आत्म-समर्पण करती शशि की
कला राहु को आज।
यह अचरज विलोक विस्मित है
नभ - नक्षत्र - समाज।

कुसुम-कली वानर के कर में
है मलीन म्रियमाण।
मृदु लतिका का प्रेमालिङ्गन
करता है पाषाण।

व्यथित हृदय में छिपा रो रहा
है युवती का प्रेम।
जहाँ प्रथम ही अश्रु-पात है,
वहाँ कहाँ है क्षेम ?

नयन नयन से हृदय हृदय से
और प्राण से प्राण।
कहते यही मौन-भाषा में
"करिए मेरा त्राण"।

उत्सव की मुदमयी निशा में
किसे भला है ध्यान ?
जग की कोमल मानवता का
होता है बलिदान ।